गलत परंपराएं : दुखी कमला

शीला बत्तरा

पता नहीं क्यों, आज कमला का मन बहुत दुखी था। उसने कुम्हार परिवार में जन्म लिया था। बचपन में वह गीली मिट्टी, सूखी मिट्टी से जी भरकर खेली थी। उस मिट्टी से उसने घरौंदे बनाए थे, मटके बनाए थे, कुंभ बनाए थे। चुपके-चुपके चक्के के घूमते चक्र को चलाया था।

अब जरा बड़ी हुई हूं तो बाबा कह देते हैं, "यह तेरे बस का काम नहीं है। जा, आटा गूंध कर रोटी बना।"

कमला को तो मिट्टी की सौंधी सुगंध बुलाती थी। बाबा का चक्का चलते देखकर वह मुग्ध हो जाती। भट्ठी का काला धुआं, सुनहरी आग की लपटें, उसे कहीं दूर नए संसार में ले जातीं। ऊपर उठती लपटों में कई रूप बनते और कई बिगड़ते देखती थी।

बाबा अधिकतर मूर्तियां ही बनाते थे। कमला के मन में एक इच्छा बलवती हो जाती कि वह भी एक दिन लक्ष्मी की मूर्तियां बनाएगी। बाब बनाने ही नहीं देते थे, "लड़कियां मूर्तियां नहीं बनातीं। तुम हाथ लगाओगी तो मूर्ति अपवित्र हो जाएगी।"

अपवित्र ! आखिर क्यों ? ये शब्द कमला को कांटे की तरह सालते रहे।

जो नारी लक्ष्मी का रूप कहलाती है—"यह मेरे घर की लक्ष्मी है—" जो नारी मानव-मूर्तियां बनाती है तो अपवित्र नहीं होती, मिट्टी की प्रतिमा को कैसे अपवित्र कर देती है ? नारी नहीं होती तो संसार भी नहीं होता। इस सवाल ने कमला को व्याकुल कर दिया। उसका आत्म-विश्वास जाग पड़ा। वह मूर्ती बनाएगी और अवश्य बनाएगी।

कुम्हार परिवारों में यह परंपरा है कि लड़कियां व औरतें मिट्टी लाने से मिट्टी गूंधने तक के सब काम करती हैं, लेकिन कुम्हार के चाक पर नहीं बैठतीं। उन्हें बैठने ही नहीं दिया जाता। जैसे, किसान औरत खेती के हल्के-भारी ढेरों काम करती है, लेकिन उसे हल चलाने की मनाही है। मजदूर औरतें सिरों पर ईंटें ढोएंगी, ऊंची-ऊंची सीढ़ियां चढ़ दुमंजले-तिमंजले ईंटों का बोझ ले जाएंगी, लेकिन पलस्तर का काम औरतें नहीं करतीं। जिन कामों के दाम ज्यादा हैं वे औरत के दायरे से बाहर रखे गए हैं। सामाजिक रीति-रिवाजों, धार्मिक नियमों या अंधविश्वासों ने औरतों का दर्जा नीचा ही रखा है।

संपादिका

रात की भीगी चांदनी चारों ओर छिटक रही थी। कमला ने जैसे नशा कर रखा हो। गीली मिट्टी उसे पुकार रही थी। उसने मिट्टी को प्यार से थपथपाया। उसका स्पर्श पाकर मिट्टी अपने आप आकार लती गई। कोमल मिट्टी पूर्ण रूप से लक्ष्मी का रूप धारण करती गई।

कमला की रात आंखों में बीत गई। सूर्य की झुकी किरणें उनके चरणों को छूने लगीं। कमला लक्ष्मी के चरणों में सो रही थी।

बाबा और अम्मा बाहर आए। उन्होंने इतनी सुंदर मूर्ती कभी नहीं देखी थी। मूर्ती और मूर्तीकार दोनों के मुख पर शांति के फूल खिले थे। हरसिंगार दोनों पर फूल बरसा रहा था। बाबा का मन किसी भावी आशंका से भयभीत हो उठा। क्या होगा कमला का ? क्या दुर्भाग्य, अनर्थ आएगा परिवार पर। पंडित मुझे बिरादरी से निकाल देंगे। मां लक्ष्मी ! क्षमा करना।

कमला अपराधिनी सी खड़ी थी। आखिर उसने ऐसा क्या किया है ? उसका अपराधी-भाव जैसे हवा में उड़ गया। बड़े आत्म विश्वास से बोली, "बाबा !

मैंने मुन्ना को जन्म दिया आपने सानन्द उसे अपना लिया। मैंने मां लक्ष्मी की मूर्ती को बनाया वह अपवित्र कैसे हो गई ? वह आप भी बनाते हैं, वह मंदिरों में पूजी जाती हैं। पवित्र पिता की बेटी अपवित्र कैसे हो गई ?"

तभी मूर्ती का खरीदार घर में आया और कमला द्वारा बनाई प्रतिमा ही उसे पसंद आई। वह उसे किसी भी दाम पर लेना चाहता था। बाबा ने उस मूर्ती को बेचने से इनकार कर दिया। पर उनके घर पर जैसे लक्ष्मी मां ने कृपा वृष्टि कर दी।

आज कमला संसार की अति लोकप्रिय कलाकार है। बाबा के घर पर संपन्नता का राज्य है। कमला ने न जाने कितनी लड़कियों की कोमल उंगलियों में जादू भर दिया है। वे भी मूर्तीकार बन गई हैं।

जब तक नारी अपना अस्तित्व नहीं समझेगी, अपने को नहीं पहचानेगी, पुरुष उसकी कला को पनपने नहीं देगा। वह नहीं चाहता कि नारी उसकी बराबरी करे। शायद वह उसके छिपे गुणों को धर्म और अंधविश्वास के परदे में छिपाकर नष्ट कर देना चाहता है, कुचल देना चाहता है ताकि वह हीन बनी रहे।

क्या आज की नारी सदा अपने आपको पुरुष से हीन बनाए रखने में संतुष्ट है ? क्या आज भी वह बेटे को बेटी से ऊंचा स्थान देती है ? कभी-कभी ऐसा लगता है कि नारी के अंदर छिपी पुरुष-पूजा उसे कमजोर कर देती है।

नारी ! तू मां है, तू कलाकार है, देख ! कोमला धरती आत्म-समर्पण करने को आतुर है, अपने अंदर सोए कलाकार को उत्साह दे, जगा दे, तुझे कोई नहीं रोक सकता !

"तोड़ दे इन बेड़ियों को
मिटा दे सारे अंध-विश्वास
सबला ! तू मानव की जननी
दे जगती को आत्म-विश्वास।" □